नजरों निमख न छूटहीं, तो नहीं लागत पल।
अंदर तो न्यारा नहीं, पर जाए न दाह बिना मिल।। १० ।।

उसकी नजर पिया से नहीं छूटती, इसलिए पलक नहीं लगती। विरहिणी को प्रीतम अन्दर से मिले होते हैं, परन्तु जब तक जाहिरी में न मिलें तब तक विरह की अग्नि नहीं बुझती।

जो दुख तुमहीं विछुरे, मोहे लाग्यो तासों प्यार।
एता सुख तेरे विरह में, तो कौन सुख होसी विहार।। ११ ।।

हे धनी! आपके बिछुड़ने से जो मुझे विरह का दुःख हुआ है वह मुझे बहुत प्यारा हो गया है, क्योंकि आप मेरे चित्त से हटते ही नहीं। जब इतना सुख आपके विरह में है तो आपके मिलन में कितना सुख होगा।

॥ प्रकरण ॥ ९ ॥ चौपाई ॥ १८७ ॥

राग धना काफी

सनमंध मूल को, मैं तो पाव पल छोड़्यो न जाए।
अब छल बल मोहे क्या करे, मोह आद थें दियो है उड़ाए।। १ ।।

हे धनी! मेरा और आपका सम्बन्ध परमधाम का है, ऐसा जानकर अब चौथाई पल के लिए भी छोड़ा नहीं जाता। आपने मेरी अज्ञानता की नींद (मोह) आदि (जड़) से उड़ा दी है। अब यह माया की ताकत मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

दरद जो तेरे दुलहा, कर डार्‌यो सब नास।
पर आस ना छोड़े जीव को, करने तुम विलास।। २ ।।

हे मेरे धनी! आपके इस विरह के दर्द ने मेरा सब कुछ नष्ट कर दिया है, परन्तु मेरे जीव को आपके साथ मिलकर आनन्द करने की आशा लगी है।

मैं कहावत हों सोहागनी, जो विरहा न देऊं जिउ।
तो पीछे वतन जाए के, क्यों देखाऊं मुख पिउ।। ३ ।।

मैं सुहागिनी अंगना कहलाती हूं और आपके वियोग में यदि न तड़पूं तो पीछे घर में जाकर मुख कैसे दिखाऊंगी?

विरहा न छोड़े जीव को, जीव आस भी पिया मिलन।
पिया संग इन अंगे करूं, तो मैं सोहागिन।। ४ ।।

आपसे बिछुड़ने का विरह मेरे जीव को छोड़ नहीं रहा है। जीव को भी आपसे मिलने की आशा लगी है। मैं इस तन से आपसे मिलूं, तभी मैं सुहागिनी कहलाऊंगी।

लागी लड़ाई आप में, एक विरहा दूजी आस।
ए भी विरहा पिउ का, आस भी पिया विलास।। ५ ।।

मेरे अन्दर एक आपके बिछुड़ने का विरह और दूसरा आपसे मिलने की आशा, इन दोनों की आपस में लड़ाई लगी है। विरह भी आपका है और आपसे मिलकर विलास की चाह भी आपकी है।

Nijanand App

जो जीव देते सकुचों, तो क्यों रहे मेरा धरम।
विरहा आगे क्या जीव, ए कहत लगत मोहे सरम।। ६ ।।

ऐसी हालत में यदि मैं अपने जीव को कुर्बान करने में संकोच करूं तो मेरा धर्म कैसे रहेगा? विरह की आग के सामने जीव है ही क्या? ऐसा कहने में मुझे शर्म लगती है।

माया काया जीवसों, भान भूंन टूक कर।
विरहा तेरा जिन दिस, मैं वारूं तिन दिस पर।। ७ ।।

माया, शरीर और जीव को टुकड़े करके भूनकर आपकी उस दिशा पर कुर्बान कर दूं, जिस दिशा से मुझे आपका विरह मिला।

जब आह सूकी अंगमें, स्वांस भी छोड्यो संग।
तब तुम परदा टाल के, दियो मोहे अपनो अंग।। ८ ।।

जब मेरे अंग से 'हाय धनी' की रट खत्म हो गई और सांस ने भी साथ छोड़ दिया, तब आपने मेरे शरीर का तामस हटाकर (शरीर का कष्ट हटाकर) मुझे स्वीकार किया और सनन्ध की वाणी बख्शीश मे दी।

मैं तो अपनो दे रही, पर तुमहीं राख्यो जिउ।
बल दे आप खड़ी करी, कछू कारज अपने पिउ।। ९ ।।

मैंने तो निराशा में ही अपने आपको खत्म कर दिया था, परन्तु आपने ही मुझे जीवित रखा। आपने अपने काम के लिए (ब्रह्मसृष्टि को घर ले जाने का काम) ही अपनी ताकत (सनन्ध वाणी) देकर फिर से खड़ा कर दिया।

जीवरा भी मेरा रख्या, तुम कारज भी कारन।
आस भी पूरी सोहागनी, वृध भी राख्यो विरहिन।। १० ।।

हे धनी! आपने अपने काम के वास्ते मुझे जीवित किया और मेरी चाहना भी पूरी की तथा मेरी लाज भी रखी।

तुम आए सब आइया, दुख गया सब दूर।
कहे महामती ए सुख क्यों कहूं, जो उदया मूल अंकूर।। ११ ।।

हे धनी! अब आप आ गए, तो मेरे विरह के सब दुःख भूल गए और सब कुछ मिल गया। इन सुखो का कैसे वर्णन करूं? मुझे तो ऐसे लगा जैसे परमधाम में आपके साथ रहते थे वैसे ही यहां हूं।

॥ प्रकरण ॥ १० ॥ चौपाई ॥ १९८ ।

सनन्ध विरह के प्रकास की

एह बात मैं तो कहूं, जो केहने की होए।
एह इमामें रीझ के, दया करी अति मोहे।। १ ।।

हे धनी! मुझे इतनी खुशी हो गई है कि मैं कह भी नहीं सकती। यह तो इमाम मेंहदी श्री राजजी महाराज ने खुश होकर मेरे ऊपर दया की और मुझे यह सनन्ध की वाणी बख्शीश में दी।

Nijanand App